[2019] 4 उम. नि. प. 198

भीवचंद्र शंकर मोरे

बनाम

बालू गंगाराम मोरे और अन्य

[2019 की सिविल अपील सं. 4669]

7 मई, 2019

न्यायमूर्ति आर. बानुमती और न्यायमूर्ति आर. सुभाष रेड्डी

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 5 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 9, नियम 13, आदेश 43, नियम 1(घ) और धारा 96] – विलंब के लिए माफी – पर्याप्त हेतुक – संपत्ति के विभाजन के लिए वाद को एकपक्षीय डिक्री किया जाना – एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन खारिज होने पर अपील किया जाना – अपील लंबित रहते हुए उसे व्यपहृत किया जाना – धारा 96 के अधीन नियमित अपील और विलंब की माफी के लिए आवेदन फाइल किया जाना – आवेदन खारिज किया जाना – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने वाले पक्षकार पर घोर उपेक्षा, जानबूझकर निष्क्रियता बरतने या सद्भाविकता की कमी का लांछन न लगाया जा सकता हो, वहां न्यायालय कार्यवाहियों में व्यतीत हुए समय को "पर्याप्त हेतुक" मानते हुए विलंब के लिए माफी देना न्याय के हित में होगा ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 9, नियम 13 और धारा 96 – एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए आवेदन गुणागुण के आधार पर खारिज किया जाना – एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध धारा 96 के अधीन नियमित अपील फाइल किया जाना – वर्जन – संहिता के दोनों उपबंधों के अधीन जांच की परिधि पूर्णतया भिन्न है और प्रतिवादी को केवल इस कारण अपील के कानूनी अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है कि उसका आदेश 9 के नियम 13 के अधीन आवेदन खारिज हो गया था ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, प्रत्यर्थी-वादी सं. 1 से 13 द्वारा वादांतर्गत संपत्ति के विभाजन और अलग कब्जे की ईप्सा करते हुए संयुक्त सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ खंड, ढांड के समक्ष विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया गया था । उक्त वाद में प्रतिवादी सं. 2 के पुत्र को वाद का समन प्राप्त हुआ । अपीलार्थी-प्रतिवादी के अनुसार वे काम की तलाश में पड़ोस के गांव में थे और उसने उन्हें वाद के समन की तामीली के बारे में सूचित नहीं किया और इसलिए वे विभाजन के लिए वाद में उपसंजात नहीं हो सके । उक्त वाद एकपक्षीय डिक्री किया गया और विभाजन के लिए आरंभिक डिक्री पारित की गई थी । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 ने एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । विचारण न्यायालय द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 उस समय उपसंजात न होने के लिए अलग-अलग कारण बता रहे हैं जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था । विचारण न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में अनेक संशोधन किए गए थे, किन्तु केवल अंतिम संशोधन में प्रतिवादियों ने यह उल्लेख किया था कि वाद के लिए समन आवेदक सं. 2 के पुत्र को तामील किया गया था । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि तानाजी एक वयस्क व्यक्ति था और उस पर तामील किए गए समन को प्रतिवादियों पर समन की प्रभावी तामीली समझा जाएगा । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन की खारिजी से व्यथित होकर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 ने तारीख 11 जून, 2013 को [2010 की सिविल अपील सं. 108] फाइल की और उसे तारीख 11 जून, 2013 को वापस ले लिया गया । अगले ही दिन अर्थात् 12 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में पारित एकपक्षीय डिक्री को चुनौती देते हुए नियमित अपील फाइल की । उन्होंने उक्त अपील के साथ चार वर्ष, दस माह और आठ दिन के विलंब की माफी के लिए 2013 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 56 भी फाइल किया । अपर

जिला न्यायाधीश, बारामती द्वारा तारीख 20 फरवरी, 2014 के आदेश द्वारा विलंब की माफी के लिए उक्त आवेदन को मंजूर किया गया । विलंब माफ करने और अपील ग्रहण करने के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 1 से 8 ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2014 की रिट याचिका सं. 3290 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 20 अगस्त, 2014 को आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट याचिका मंजूर की कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल आवेदन को गलत कार्यवाहियां नहीं कहा जा सकता है और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करके उपचार जारी रखने में व्यतीत हुए समय को परिसीमा की गणना के लिए अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 9, नियम 13 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी, जिसने एकपक्षीय डिक्री सहन की है, के पास दो उपचार होते हैं – (i) या तो वह न्यायालय का यह समाधान करते हुए कि समन सम्यक् रूप से तामील नहीं किए गए थे या वे तामील तो हुए थे, किंतु जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था तब "पर्याप्त हेतुक" से वह न्यायालय में उपसंजात नहीं हो सका था, एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करे ; (ii) या मूल डिक्री से प्रथम अपील न्यायालय में नियमित अपील फाइल करे और गुणागुण के आधार पर एकपक्षीय डिक्री को चुनौती दे । यह उल्लेखनीय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) की व्याप्ति पूर्णत: भिन्न-भिन्न है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या समन सम्यक् रूप से तामील किए गए थे या नहीं अथवा जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था क्या प्रतिवादी किसी "पर्याप्त हेतुक" से उपसंजात होने से निवारित रहा

था । यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि प्रतिवादी को समन सम्यक् रूप से तामील नहीं किया गया था वह "पर्याप्त हेतुक" से निवारित रहा था, तो न्यायालय एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर सकता है और वाद को इसकी मूल स्थिति में प्रत्यावर्तित कर सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के निबंधनों के अनुसार, एकपक्षीय पारित मूल डिक्री से अपील की जाएगी । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन फाइल नियत अपील में अपील न्यायालय को डिक्री के गुणागुणों पर विचार करने की व्यापक अधिकारिता है । केवल इस कारण कि प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उपचार का आश्रय लिया था, वह इस बात के लिए अपील फाइल करने से प्रतिषिद्ध नहीं हो जाता है यदि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उसका आवेदन खारिज हो जाता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन अपील का अधिकार एक कानूनी अधिकार है और प्रतिवादी को अपील के कानूनी अधिकार से केवल इस आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है कि उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया था । उच्च न्यायालय की उपरोक्त इस मताभिव्यक्ति को कि "उपबंधित उपचार साथ-साथ हैं और इन्हें क्रमवार उपचारों के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है" कठोर रीति में और एक अनम्य सिद्धांत के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है । इस पर प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर रहते हुए और क्या प्रतिवादी ने क्रमवार उपचार को आगे बढ़ाने में विलंबकारी युक्ति अपनाई है या नहीं, पर विचार किया जाना चाहिए । केवल उन मामलों में जहां प्रतिवादी ने विलंबकारी युक्ति अपनाई है या जहां दोनों उपचारों को क्रमवर्ती रूप में आगे बढ़ाने में सद्भावना की कमी है, न्यायालय प्रथम अपील फाइल करने में हुए विलंब की माफी देने से इनकार कर सकता है । यदि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उपचार को आगे बढ़ाने में व्यतीत हुए समय के कारण विलंब की माफी देने से इनकार करता है, तो प्रतिवादी डिक्री को गुणागुण के आधार पर चुनौती देते हुए अपील करने के कानूनी अधिकार से वंचित हो जाएगा । (पैरा 10, 11, 12 और 14)

प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी सं. 1 से 13 ने वर्ष 2007 में विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया, जो तारीख 4 जुलाई, 2008 को एकपक्षीय डिक्री किया गया था । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किया और उसे तारीख 6 अगस्त, 2010 को खारिज कर दिया गया । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन की खारिजी से व्यथित होकर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने तारीख 3 सितम्बर, 2010 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(घ) के अधीन एक अपील फाइल की । निस्संदेह, उक्त अपील लगभग तीन वर्ष से लंबित थी और उसे तारीख 1 जून, 2013 को वापस ले लिया गया । तत्पश्चात्, अगले दिन अर्थात् तारीख 12 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में तारीख 4 जुलाई, 2008 को पारित एकपक्षीय डिक्री और निर्णय को चुनौती देते हुए एक अपील फाइल की । यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 मामले को आगे बढ़ाने में घोर उपेक्षावान थे, इतना ही नहीं, जब डिक्री विभाजन के लिए वाद में पारित की गई थी । यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 97 के अनुसार जहां किसी प्रारंभिक डिक्री से व्यथित कोई पक्षकार ऐसी डिक्री की अपील नहीं करता है, वहां वह उसकी शुद्धता के बारे में अंतिम डिक्री के विरुद्ध की गई अपील में विवाद करने से प्रवारित रहेगा । उद्देश्य यह है कि प्रारंभिक डिक्री पारित करने के प्रक्रम पर न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए प्रश्नों को अंतिम डिक्री के समय चुनौती नहीं दी जा सकती है । यदि प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई थी, प्रत्यर्थी-वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद विभाजन के लिए वाद होने के कारण अपीलार्थी गुणागुण के आधार पर डिक्री को चुनौती देने के अवसर से वंचित हो जाएंगे । न्याय के हित में, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल उनके आवेदन की खारिजी के होते हुए भी तारीख 4 जुलाई, 2008 की एकपक्षीय डिक्री को गुणागुण के आधार पर चुनौती देने का अवसर दिया जाना चाहिए । प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, सिविल

प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन को आगे बढ़ाने में व्यतीत हुए समय को प्रथम अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ करने के लिए "पर्याप्त हेतुक" के रूप में लिया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता है और अपास्त किया जाना चाहिए । (पैरा 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 693 : **बी. माधुरी गौड़** बनाम **बी. दामोदर रेड्डी** ;	6,15
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 787 : **भानू कुमार जैन** बनाम **अर्चना कुमार और एक अन्य** ;	12
[1998]	(1998) 7 एस. सी. सी. 123 : **एन. बालकृष्णन्** बनाम **एम. कृष्णामूर्ति** ;	16
[1937]	1937 वाल्यूम 40 बम्बई ला रिपोर्टर 957 : **जोतिबा लिंबाजी कंशेनवर** बनाम **रामप्पा जोतिबा कंशेनवर** ।	5,13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की सिविल अपील सं. 4669.

2014 की रिट याचिका सं. 3290 में बम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 20 अगस्त, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सुशील करंजकर और के. एन. राय

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विनय नवारे, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) जेन कार्तिक, (सुश्री) आभा आर. शर्मा और एम. वाई. देशमुख

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. बानुमती ने दिया ।

न्या. बानुमती – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील 2014 की रिट याचिका सं. 3290 में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 20 अगस्त, 2014 को पारित किए गए उस निर्णय से उद्भूत हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में तारीख 4 जुलाई, 2008 को पारित की गई एकपक्षीय डिक्री को चुनौती देते हुए प्रथम अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ करने से इनकार कर दिया था ।

3. वे संक्षिप्त तथ्य, जिनके आधार पर यह अपील फाइल की गई है, निम्नलिखित हैं :–

प्रत्यर्थी-वादी सं. 1 से 13 ने वादांतर्गत संपत्ति के विभाजन और अलग कब्जे की ईप्सा करते हुए संयुक्त सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ खंड, ढांड के समक्ष विभाजन के लिए एक वाद 2007 का नियमित सिविल वाद सं. 35 फाइल किया । उक्त वाद में प्रतिवादी सं. 2 के पुत्र अर्थात् तानाजी को तारीख 25 फरवरी, 2007 को वाद का समन प्राप्त हुआ । अपीलार्थी-प्रतिवादी के अनुसार वे काम की तलाश में पड़ोस के गांव में थे और तानाजी ने उन्हें वाद के समन की तामीली के बारे में सूचित नहीं किया और इसलिए वे विभाजन के लिए वाद में उपसंजात नहीं हो सके । उक्त वाद एकपक्षीय डिक्री किया गया था और तारीख 4 जुलाई, 2008 को विभाजन के लिए आरंभिक डिक्री पारित की गई थी । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 ने एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । दोनों पक्षकारों की दलीलों पर विचार करने के पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया गया । विचारण न्यायालय ने यह पाया कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 उस समय उपसंजात न होने के लिए अलग-अलग कारण बता रहे हैं जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था । विचारण न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में अनेक संशोधन किए गए थे, किन्तु केवल अंतिम संशोधन में प्रतिवादियों ने यह उल्लेख किया था कि वाद के लिए समन आवेदक सं. 2 के पुत्र अर्थात् तानाजी को तामील किया गया था ।

विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि तानाजी एक वयस्क व्यक्ति था और उस पर तामील किए गए समन को प्रतिवादियों पर समन की प्रभावी तामीली समझा जाएगा ।

4. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन की खारिजी से व्यथित होकर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 ने तारीख 11 जून, 2013 को 2010 की सिविल अपील सं. 108 फाइल की और उसे तारीख 11 जून, 2013 को वापस ले लिया गया । अगले ही दिन अर्थात् 12 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में पारित एकपक्षीय डिक्री को चुनौती देते हुए नियमित अपील फाइल की । उन्होंने उक्त अपील के साथ चार वर्ष, दस माह और आठ दिन के विलंब की माफी के लिए 2013 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 56 भी फाइल किया । अपर जिला न्यायाधीश, बारामती द्वारा तारीख 20 फरवरी, 2014 के आदेश द्वारा विलंब की माफी के लिए उक्त आवेदन को मंजूर किया गया । न्यायालय ने यह पाया कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 को वाद का गुणागुण के आधार पर प्रतिवाद करने का अवसर नहीं मिला है । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने गलत कार्यवाहियों में अर्थात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करके और उसके उपरांत अपील फाइल करके अपना समय व्यतीत किया है और इसलिए विभाजन के लिए वाद में पारित एकपक्षीय डिक्री को चुनौती देते हुए अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ करना न्यायसंगत और उचित होगा । तद्नुसार, जिला न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया और एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए आवेदन को मंजूर किया ।

5. विलंब माफ करने और अपील ग्रहण करने के आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 1 से 8 ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2014 की रिट याचिका सं. 3290 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 20 अगस्त,

2014 को आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट याचिका मंजूर की कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल आवेदन को गलत कार्यवाहियां नहीं कहा जा सकता है और इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करके उपचार जारी रखने में व्यतीत हुए समय को परिसीमा की गणना के लिए अपवर्जित नहीं किया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने **जोतिबा लिंबाजी कंशेनवर** बनाम **रामप्पा जोतिबा कंशेनवर**[1] वाले मामले में अपने ही निर्णय का अवलंब लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करके उपचार जारी रखने का चयन करने और अपील के उपचार को जारी न रखने जो उस समय उसके लिए खुला था तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में असफल होने पर अपीलार्थी-प्रतिवादी अपील फाइल करने और विलंब की माफी की ईप्सा करने के उपचार पर वापस नहीं आ सकते हैं । उच्च न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि दोनों उपचार साथ-साथ जारी रखे जाने चाहिए और इन्हें एक के बाद दूसरे उपचार के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है और इन निष्कर्षों के आधार पर रिट याचिका मंजूर की, जोकि इस अपील में चुनौती की विषयवस्तु है ।

6. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सुशील करंजकर ने यह दलील दी कि वाद का समन प्रतिवादी सं. 2 के तानाजी नामक पुत्र को तामील किया गया था और सुसंगत समय पर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 किसी काम के लिए पड़ोस के गांव में थे और वे मामले की पैरवी नहीं कर सके और इसलिए अपील फाइल करने में हुए विलंब को साशय किया गया विलंब नहीं कहा जा सकता है । **बी. माधुरी गौड़** बनाम **बी. दामोदर रेड्डी**[2] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाया गया सतत् दृष्टिकोण यह है कि "पर्याप्त हेतुक" शब्दों का

---

[1] 1937 वाल्यूम 40 बम्बई ला रिपोर्टर 957.

[2] (2012) 12 एस. सी. सी. 693.

उदारतापूर्वक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए और जिला न्यायालय ने ठीक ही अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए माफी दी थी । यह दलील दी गई कि यदि अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए माफी नहीं दी जाती है, तो अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 और 15 गुणागुण के आधार पर प्रतिवाद करने का अवसर न मिलने के कारण वादांतर्गत संपत्ति में, जो कि अविभक्त कुटुंब की संपत्ति है, अपने मूल्यवान अधिकार को खो देंगे ।

7. प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री विनय नवारे ने यह दलील दी कि एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन कार्यवाहियां चलाने में व्यतीत हुआ समय पूर्णत: असंगत है चूंकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन वे कार्यवाहियां कभी भी सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन अपील फाइल करने के लिए वर्जन के रूप में लागू नहीं थी । यह भी दलील दी गई कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 के अधीन फाइल किया गया आवेदन गुणागुण के आधार पर खारिज किया गया था और उक्त आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली है और अपीलार्थी उक्त आदेश को चुनौती देते हुए अपील फाइल करने के लिए इस आधार पर विलंब की माफी की ईप्सा नहीं कर सकते हैं कि वे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन अन्य उपचार जारी रखे हुए थे ।

8. हमने दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया और आक्षेपित निर्णय तथा अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य सामग्री का परिशीलन किया । विचार करने के लिए निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत हुए हैं :–

(i) क्या एकपक्षीय डिक्री को अपास्त करने के लिए चलाई गई कार्यवाहियों में व्यतीत हुए समय से भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अर्थांतर्गत “पर्याप्त कारण” का गठन होता है जिससे कि गुणागुण के आधार पर एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफी दी जा सके ?

(ii) जब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के

अधीन फाइल किए गए आवेदन को गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया गया है, तो क्या सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन नियमित अपील फाइल करना वर्जित है ?

9. तथ्य विवादग्रस्त नहीं हैं । प्रत्यर्थी सं. 1 से 13 द्वारा विभाजन के लिए वाद वर्ष 2007 में फाइल किया गया था । इसे तारीख 4 जुलाई, 2008 को एकपक्षीय डिक्रीत किया गया था । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने तारीख 15 अक्तूबर, 2008 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किया और इसे तारीख 6 अगस्त, 2010 के आदेश द्वारा गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया गया । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए तारीख 3 सितम्बर, 2010 को एक अपील फाइल की । इसके फाइल करने के लगभग तीन वर्ष पश्चात् उक्त अपील वापस ले ली गई और अगले ही दिन अर्थात् 12 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में पारित की गई डिक्री को चुनौती देते हुए चार वर्ष, दस माह और आठ दिन के विलंब की माफी के लिए आवेदन सहित अपील फाइल की ।

10. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) को संयुक्त रूप से पढ़ने पर यह अदर्शित होता है कि प्रतिवादी, जिसने एकपक्षीय डिक्री सहन की है, के पास दो उपचार होते हैं – (i) या तो वह न्यायालय का यह समाधान करते हुए कि समन सम्यक् रूप से तामील नहीं किए गए थे या वे तामील तो हुए थे, किंतु जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था तब "पर्याप्त हेतुक" से वह न्यायालय में उपसंजात नहीं हो सका था, एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल करे ; (ii) या मूल डिक्री से प्रथम अपील न्यायालय में नियमित अपील फाइल करे और गुणागुण के आधार पर एकपक्षीय डिक्री को चुनौती दे ।

11. यह उल्लेखनीय है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9 के नियम 13 और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) की व्याप्ति पूर्णत: भिन्न-भिन्न है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13

के अधीन फाइल किए गए आवेदन में न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या समन सम्यक् रूप से तामील किए गए थे या नहीं अथवा जब वाद सुनवाई के लिए पुकारा गया था तब क्या प्रतिवादी किसी "पर्याप्त हेतुक" से उपसंजात होने से निवारित रहा था । यदि न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि प्रतिवादी को समन सम्यक् रूप से तामील नहीं किया गया था या वह "पर्याप्त हेतुक" से निवारित रहा था, तो न्यायालय एकपक्षीय डिक्री को अपास्त कर सकता है और वाद को इसकी मूल स्थिति में प्रत्यावर्तित कर सकता है । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के निबंधनों के अनुसार, एकपक्षीय पारित मूल डिक्री से अपील की जाएगी । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन फाइल नियमित अपील में अपील न्यायालय को डिक्री के गुणागुण पर विचार करने की व्यापक अधिकारिता है । केवल इस कारण कि प्रतिवादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उपचार का आश्रय लिया था, यह बात उसे अपील फाइल करने से प्रतिषिद्ध नहीं करती है, यदि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उसका आवेदन खारिज हो जाता है ।

12. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96(2) के अधीन अपील का अधिकार एक कानूनी अधिकार है और प्रतिवादी को अपील के कानूनी अधिकार से केवल इस आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है कि उसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया था । **भानू कुमार जैन** बनाम **अर्चना कुमार और एक अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया था कि क्या इस तथ्य के बावजूद प्रथम अपील संधार्य थी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किया गया था और उसे खारिज कर दिया गया था । यह मत व्यक्त करते हुए कि अपील का अधिकार एक कानूनी अधिकार है और मुवक्किल को ऐसे अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है, पैरा (36) और (38) में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

---

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 787.

"36. ..... प्रथम अपील में डिक्री की शुद्धता को प्रश्नगत करने का अधिकार एक कानूनी अधिकार है । ऐसे अधिकार को तब तक कम नहीं किया जाएगा और न ही उस पर कोई रोक लगाई जाएगी जब तक कि कानून में अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा ऐसा उपबंधित न हो । [दीपल गिरिशभाई सोनी और अन्य **बनाम** यूनाइटेड इंडिया कं. लि. बड़ौदा (2004) 5 एस. सी. सी. 385 और चंद्रावती पी. के. और अन्य **बनाम** सी. के. साजी और अन्य (2004) 3 एस. सी. सी. 734 वाले मामले देखें]"

.....

"38. हमारी राय में, इस द्वन्द्व को यह अभिनिर्धारित करके सुलझाया जा सकता है कि प्रतिवादी विचारण न्यायालय द्वारा वाद को एकपक्षीय सुनवाई के लिए सूचीबद्ध करने के आदेश की शुद्धता या अन्यथा को और/या न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी के उपसंजात न होने के लिए पर्याप्त हेतुक विद्यमान होने के विषय में दलील देने के लिए अनुज्ञात नहीं होगा, जबकि संहिता की धारा 96(2) के अधीन उसके द्वारा फाइल की गई प्रथम अपील में वह वाद के गुणागुण के आधार पर तर्क देने के लिए स्वतंत्र होगा जिससे कि वह यह दलील देने में समर्थ हो सके कि वादियों द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री उसके पक्ष में डिक्री पारित करने के लिए पर्याप्त नहीं थी या वाद अन्यथा संधार्य नहीं था । न्यायालय की अधिकारिता की कमी भी ऐसी अपील में एक संभावित अभिवाक् हो सकता है । तथापि, हम श्री चौधरी से सहमत हैं कि संहिता के आदेश 9, नियम 13 से संलग्न 'स्पष्टीकरण' का अति नियमनिष्ठ अर्थान्वयन किया जाएगा, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा रानी चौधरी **बनाम** लेफ्टिनेंट कर्नल सूरज जीत चौधरी (1982) 2 एस. सी. सी. 596, पी. किरण कुमार **बनाम** ए. एस. खादर और अन्य (2002) 5 एस. सी. सी. 161 और श्याम सुंदर शर्मा **बनाम** पन्ना लाल जायसवाल और अन्य (2005) 1 एस. सी. सी. 436 वाले मामलों में अभिनिर्धारित किया गया है ।"

13. उच्च न्यायालय ने **जोतिबा लिंबाजी** (उपर्युक्त) वाले मामले

में अपने ही निर्णय को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि एकपक्षीय डिक्री अपास्त करने के लिए निचले न्यायालय के आदेश से अपील मना होने के पश्चात् प्रतिवादी पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय को आवेदन करने की सोच सकता है और उस प्रक्रिया में पर्याप्त समय बर्बाद हो सकता है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में अन्य निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "15. ..... बेईमान प्रतिवादी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल कर सकता है और इसमें गुणागुण पर विचार किए बिना आदेश को उच्चतम न्यायालय तक ले जा सकता है और उसके पश्चात् फिर भी डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल कर सकता है । वादी के लिए उस मामले में पर्याप्त समय बर्बाद हो जाएगा । प्रक्रिया विधि के अधीन प्रत्येक उपबंध का उद्देश्य न्यायसंगतता, ऋजुता और न्यायालय कार्यवाहियों के पक्षकारों को सुनवाई का पूरा अवसर देना है । यह प्रत्येक कल्पनीय स्थिति की आवश्यकता की पूर्ति करती है किन्तु साथ-ही-साथ विधि मुकदमेबाज से निष्कपट, ईमानदार और ऋजु होने की प्रत्याशा करती है । एकपक्षीय डिक्री के विरुद्ध उपबंधित दो उपचार दो भिन्न परिस्थितियों की बाबत हैं और केवल तब इनका आश्रय लिए जाने की प्रत्याशा की जाती है यदि किसी मुकदमेबाज के पास उस स्थिति के अनुसार तथ्य उपलब्ध हैं । उपबंधित उपचार साथ-साथ हैं और इन्हें क्रमवार उपचारों में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है ।"

14. उच्च न्यायालय की उपरोक्त इस मताभिव्यक्ति को कि "उपबंधित उपचार साथ-साथ हैं और इन्हें क्रमवार उपचारों के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है" कठोर रीति में और एक अनम्य सिद्धांत के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है । इस पर प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर रहते हुए और क्या प्रतिवादी ने

क्रमवार उपचार को आगे बढ़ाने में विलंबकारी युक्ति अपनाई है या नहीं, पर विचार किया जाना चाहिए । केवल उन मामलों में जहां प्रतिवादी ने विलंबकारी युक्ति अपनाई है या जहां दोनों उपचारों को क्रमवर्ती रूप में आगे बढ़ाने में सद्भावना की कमी है, वहां न्यायालय प्रथम अपील फाइल करने में हुए विलंब की माफी देने से इनकार कर सकता है । यदि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन उपचार को आगे बढ़ाने में व्यतीत हुए समय के कारण विलंब की माफी देने से इनकार करता है, तो प्रतिवादी डिक्री को गुणागुण के आधार पर चुनौती देते हुए अपील करने के कानूनी अधिकार से वंचित हो जाएगा ।

15. यह भलीभांति सुस्थिर है कि "पर्याप्त कारण" का तब उदार अर्थान्वयन किया जाना चाहिए जब कोई निष्क्रियता, उपेक्षा न हो और न ही अपीलार्थी पर सद्भाविकता की कमी का लांछन लगाया जा सकता हो, जिससे कि पोषणीय न्याय को अग्रसर किया जा सके । **बी. माधुरी** (उपर्युक्त) वाले मामले में विभिन्न निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "6. परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 में और अन्य कानूनों में प्रयुक्त "पर्याप्त हेतुक" शब्द न्यायालयों को उस विधि को सार्थक रीति में लागू करने के लिए समर्थ बनाने हेतु पर्याप्त रूप से नम्य है जिससे न्याय की पूर्ति होती है । विलंब की माफी के लिए आवेदनों का विनिश्चय करने के लिए कोई कठोर नियम अधिकथित नहीं किया गया है या किया जा सकता है किंतु वर्षों से न्यायालयों ने बारंबार यह मत व्यक्त किया है कि ऐसे मामलों में उदार दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है जिससे कि पक्षकारों के सारभूत अधिकार केवल विलंब के आधार पर विफल न हो सके ।"

16. **एन. बालकृष्णन्** बनाम **एम. कृष्णामूर्ति**[1] वाले मामले में इस

---

[1] (1998) 7 एस. सी. सी. 123.

न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कि परिसीमा के नियमों का अभिप्राय पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करना नहीं है, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "11. परिसीमा के नियमों का अभिप्राय पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करना नहीं है । उनका अभिप्राय यह देखना है कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियों का आश्रय न लें अपितु अपने उपचार की ईप्सा तत्परता से करें । कोई विधिक उपचार प्रदान करने का उद्देश्य विधिक क्षति के कारण कारित नुकसान की भरपाई करना है । परिसीमा विधि इस प्रकार पहुंची विधिक क्षति के निवारण के लिए ऐसे विधिक उपचार हेतु एक समयावधि नियत करती है । समय मूल्यवान है और बर्बाद हुआ समय पुन: कभी हासिल नहीं होगा । समय बीतने के दौरान नए-नए कारण उत्पन्न होंगे और न्यायालयों में समावेदन करके विधिक उपचार की ईप्सा करने के लिए नए-नए व्यक्तियों की आवश्यकता होगी । इसलिए प्रत्येक उपचार के लिए एक समयावधि अवश्य नियत होनी चाहिए । उपचार को आरंभ करने के लिए अंतहीन अवधि होने से अंतहीन अनिश्चितता और पारिणामिक अराजकता उत्पन्न हो सकती है । इस प्रकार, परिसीमा विधि लोक नीति पर आधारित है । यह इस सूत्र में अंतर्विष्ट है इंट्रस्ट रिपब्लिके अप सिट फिनिस लिटियम (राज्य का हित इस बात में है कि मुकदमेबाजी का अंत हो) । परिसीमा के नियम का अभिप्राय पक्षकारों के अधिकारों को नष्ट करना नहीं है । उनका अभिप्राय यह देखना है कि पक्षकार विलंबकारी युक्तियों का आश्रय न लें अपितु अपने उपचार की ईप्सा तत्परता से करें । धारणा यह है कि प्रत्येक विधिक उपचार विधायिका द्वारा नियत समयावधि तक बचा रहना चाहिए ।"

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन अपील एक कानूनी अधिकार है । साधारणतया, जहां विलंब की माफी की ईप्सा करने वाले पक्षकार पर घोर उपेक्षा या

जानबूझकर निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का लांछन न हो वहां, न्याय के हित में, अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए माफी दे दी जानी चाहिए ।

17. प्रस्तुत मामले में, प्रत्यर्थी सं. 1 से 13 ने वर्ष 2007 में विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया, जो तारीख 4 जुलाई, 2008 को एकपक्षीय डिक्री किया गया था । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन फाइल किया और उसे तारीख 6 अगस्त, 2010 को खारिज कर दिया गया । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन की खारिजी से व्यथित होकर अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने तारीख 3 सितम्बर, 2010 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 43, नियम 1(घ) के अधीन एक अपील फाइल की । निस्संदेह, उक्त अपील लगभग तीन वर्ष से लंबित थी और उसे तारीख 1 जून, 2013 को वापस ले लिया गया । तत्पश्चात्, अगले दिन अर्थात् तारीख 12 जून, 2013 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 ने 2007 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में तारीख 4 जुलाई, 2008 को पारित एकपक्षीय डिक्री और निर्णय को चुनौती देते हुए एक अपील फाइल की । यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 मामले को आगे बढ़ाने में घोर उपेक्षावान थे, इतना ही नहीं, जब डिक्री विभाजन के लिए वाद में पारित की गई थी ।

18. यह उल्लेख करना आवश्यक है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 97 के अनुसार जहां किसी प्रारंभिक डिक्री से व्यथित कोई पक्षकार ऐसी डिक्री की अपील नहीं करता है, वहां वह उसकी शुद्धता के बारे में अंतिम डिक्री के विरुद्ध की गई अपील में विवाद करने से प्रवारित रहेगा । उद्देश्य यह है कि प्रारंभिक डिक्री पारित करने के प्रक्रम पर न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए प्रश्नों को अंतिम डिक्री के समय चुनौती नहीं दी जा सकती है । यदि प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई थी, प्रत्यर्थी-वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद

विभाजन के लिए वाद होने के कारण अपीलार्थी गुणागुण के आधार पर डिक्री को चुनौती देने के अवसर से वंचित हो जाएंगे । न्याय के हित में, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन फाइल उनके आवेदन की खारिजी के होते हुए भी तारीख 4 जुलाई, 2008 की एकपक्षीय डिक्री को गुणागुण के आधार पर चुनौती देने का अवसर दिया जाना चाहिए ।

19. प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 13 के अधीन आवेदन को आगे बढ़ाने में व्यतीत हुए समय को प्रथम अपील फाइल करने में हुए विलंब को माफ करने के लिए "पर्याप्त हेतुक" के रूप में लिया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय कायम नहीं रखा जा सकता है और अपास्त किया जाना चाहिए ।

20. परिणामतः, 2014 की रिट याचिका सं. 3290 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 20 अगस्त, 2014 को पारित आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है और यह अपील मंजूर की जाती है । 2009 के नियमित सिविल वाद सं. 35 में पारित निर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने में हुए विलंब के लिए माफी दी जाती है और अपीलार्थी प्रत्यर्थी सं. 14 तथा 15 द्वारा फाइल की गई अपील प्रत्यावर्तित हो जाएगी । प्रथम अपील न्यायालय "श्री भीवचंद्र शंकर मोरे और अन्य बनाम श्री बालू गंगाराम मोरे और अन्य" शीर्षक वाली अपील को फाइल पर लेगा और उस पर विधि के अनुसार कार्यवाही करेगा । हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुणागुण पर कोई राय व्यक्त नहीं की है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.